ईमान की कसौटी

मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी (रह.)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो निहायत मेहरबान बहुत रहमवाला है।"

ईमान की कसौटी

क़ुरआन के मुताबिक़ इनसान की गुमराही के तीन सबब हैं— एक यह कि वह ख़ुदा के क़ानून को छोड़कर अपने मन की ख़्वाहिशों का ग़ुलाम बन जाए। दूसरा यह कि ख़ुदाई क़ानून के मुक़ाबले में अपने ख़ानदान के रस्म-रिवाज और बाप-दादा के तौर-तरीक़ों को तरजीह (प्राथमिकता) दे। तीसरा यह कि ख़ुदा और उसके रसूल *(सल्ल.)* ने जो तरीक़ा बताया है उसको छोड़कर इनसानों की पैरवी करने लगे, चाहे वे इनसान ख़ुद उसकी अपनी क़ौम के बड़े लोग हों या ग़ैर-क़ौमों के लोग।

मुसलमान की असली पहचान यह है कि वह इन तीनों बीमारियों से पाक हो। मुसलमान कहते ही उसको हैं जो ख़ुदा के सिवा किसी का बन्दा और रसूल *(सल्ल.)* के सिवा किसी और की पैरवी करनेवाला न हो। मुसलमान वह है जो सच्चे दिल से इस बात पर यक़ीन रखता हो कि ख़ुदा और उसके रसूल *(सल्ल.)* की तालीम सरासर हक़ (सत्य) है इसके ख़िलाफ़ जो कुछ है वह बातिल (झूठ) है

और इनसान के लिए दीन और दुनिया की भलाई जो कुछ भी है सिर्फ़ ख़ुदा और उसके रसूल *(सल्ल.)* की तालीम में है। इस बात पर पूरा यक़ीन जिस शख़्स को होगा वह अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में सिर्फ़ यह देखेगा कि अल्लाह और उसके रसूल *(सल्ल.)* का क्या हुक्म है। और जब उसे हुक्म मालूम हो जाएगा तो वह सीधी तरह से उसके आगे सिर झुका देगा। फिर चाहे उसका दिल कितना ही तिलमिलाए और ख़ानदान के लोग कितनी ही बातें बनाएँ और दुनियावाले कितनी ही मुख़ालिफ़त करें, वह उनमें से किसी की परवाह न करेगा, क्योंकि हर एक के लिए उसका साफ़ जवाब यही होगा कि मैं ख़ुदा का बन्दा हूँ, तुम्हारा बन्दा नहीं हूँ और मैं रसूल *(सल्ल.)* पर ईमान लाया हूँ, तुमपर ईमान नहीं लाया हूँ।

इसके बरख़िलाफ़ अगर कोई शख़्स यह कहता है कि ख़ुदा और रसूल का हुक्म यह है तो हुआ करे, मेरा दिल तो इसको नहीं मानता, मुझे तो इसमें नुक़सान नज़र आता है, इसलिए मैं ख़ुदा और रसूल की बात को छोड़कर अपनी राय पर चलूँगा, तो ऐसे शख़्स का दिल ईमान से ख़ाली होगा। वह मोमिन नहीं बल्कि मुनाफ़िक़ है कि ज़बान से तो कहता है कि मैं ख़ुदा का बन्दा और रसूल की पैरवी

करनेवाला हूँ, मगर हक़ीक़त में अपने नफ़्स का बन्दा और अपनी राय का अनुयायी बना हुआ है।

इसी तरह अगर कोई शख़्स यह कहता है कि ख़ुदा और रसूल *(सल्ल.)* का हुक्म कुछ भी हो, मगर फ़ुलाँ बात तो बाप-दादा से होती चली आ रही है, उसको कैसे छोड़ा जा सकता है, या फ़ुलाँ क़ायदा तो मेरे ख़ानदान या बिरादरी में मुक़र्रर है, उसे कैसे तोड़ा जा सकता है, तो ऐसे शख़्स का शुमार भी मुनाफ़िक़ों में होगा, चाहे नमाज़ें पढ़ते-पढ़ते उसकी पेशानी पर कितना ही बड़ा गट्टा पड़ गया हो और ज़ाहिर में उसने कितनी ही शरई (दीनी) सूरत बना रखी हो। इसलिए कि दीन की अस्ल हक़ीक़त उसके दिल में उतरी ही नहीं। दीन रुकू और सजदे और रोज़े और हज का नाम नहीं है और न दीन इनसान की सूरत और उसके लिबास में होता है, बल्कि अस्ल में दीन नाम है ख़ुदा और रसूल की फ़रमाँबरदारी का। जो शख़्स अपने मामले में ख़ुदा और रसूल की फ़रमाँबरदारी से इनकार करता है, उसका दिल हक़ीक़त में दीन से ख़ाली है। उसकी नमाज़ और उसका रोज़ा और उसकी शरई और दीनी सूरत एक धोखे के सिवा कुछ नहीं।

इसी तरह अगर कोई शख़्स ख़ुदा की किताब और उसके रसूल की हिदायत से बेपरवाह होकर

कहता है कि फ़ुलाँ बात इसलिए अपनाई जाए कि वह अंग्रेज़ों में राइज है, और फ़ुलाँ बात इसलिए क़बूल की जाए कि फ़ुलाँ क़ौम उसकी वजह से तरक़्क़ी कर रही है, और फ़ुलाँ बात इसलिए मानी जाए कि फ़ुलाँ बड़ा आदमी ऐसा कहता है तो ऐसे शख़्स को भी अपने ईमान की ख़ैर मनानी चाहिए। ये बातें ईमान के साथ जमा नहीं हो सकतीं। मुसलमान हो और मुसलमान रहना चाहते हो तो हर उस बात को उठाकर दीवार पर दे मारो जो ख़ुदा और रसूल की बात के ख़िलाफ़ हो। अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते तो इस्लाम का दावा तुम्हें शोभा नहीं देता। ज़बान से कहना कि हम ख़ुदा और रसूल को मानते हैं मगर अपनी ज़िन्दगी के मामलों में हर वक़्त दूसरों की बात के मुक़ाबले में ख़ुदा और रसूल की बात को रद्द करते रहना, न ईमान है, न इस्लाम; बल्कि इसका नाम मुनाफ़िक़त (कपट) है।

क़ुरआन पाक के अठारहवें पारे में अल्लाह ने साफ़-साफ़ लफ़्ज़ों में फ़रमा दिया है—

> “हमने साफ़-साफ़ हक़ीक़त बतानेवाली आयतें उतार दी हैं। आगे अल्लाह ही जिसको चाहता है इन आयतों के ज़रीए से सीधा रास्ता दिखा देता है।
>
> ये लोग कहते हैं कि हम ईमान लाए अल्लाह

और उसके रसूल पर और हमने इताअत क़बूल की, मगर इसके बाद इनमें से एक गरोह (इताअत से) मुँह मोड़ जाता है, ऐसे लोग हरगिज़ ईमानवाले नहीं हैं। जब इनको अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ बुलाया जाता है; ताकि रसूल इनके आपस के मुक़द्दमे का फ़ैसला करे, तो इनमें से एक फ़रीक़ कतरा जाता है, अलबत्ता अगर हक़ उनके पक्ष में हो तो रसूल के पास बड़े फ़रमाँबरदार बनकर आ जाते हैं। क्या इन लोगों के दिलों को (कपट का) रोग लगा हुआ है? या ये शक में पड़े हुए हैं? या इनको यह डर है कि अल्लाह और उसका रसूल इनपर ज़ुल्म करेगा। असूल बात यह है कि ज़ालिम तो ये लोग खुद हैं? जो ईमानवाले हैं उनका तरीक़ा तो यह है कि जब वे अल्लाह और रसूल की तरफ़ बुलाए जाएँ, ताकि रसूल उनके मुक़द्दमे का फ़ैसला करे तो वे कहें कि हमने सुना और इताअत की। ऐसे ही लोग कामयाबी पानेवाले हैं, और कामयाब वही हैं जो अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी करें और अल्लाह से डरें और उसकी नाफ़रमानी से बचें।" (क़ुरआन, 24:46-52)

इन आयतों में ईमान की जो तारीफ़ (परिभाषा) बयान की गई है, उसपर ग़ौर कीजिए। असली ईमान यह है कि अपने आपको खुदा की किताब

और उसके रसूल की हिदायत के सुपुर्द कर दें। जो हुक्म वहाँ से मिले, उसके आगे सिर झुका दें और उसके मुक़ाबले में किसी की न सुनें– न अपने दिल की, न ख़ानदानवालों की और न ही दुनियावालों की। यह कैफ़ियत जिसमें पैदा हो जाए वही मोमिन और मुस्लिम है और जो इससे ख़ाली हो उसकी हैसियत मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) से ज़्यादा नहीं।

आपने सुना होगा कि अरब में शराब पीने का कितना ज़ोर था। औरत और मर्द, जवान और बूढ़े सब शराब के रसिया थे। उनको अस्ल में शराब से इश्क़ था। इसकी तारीफ़ों के गीत गाते थे और इसपर जान देते थे। यह भी आपको मालूम होगा कि शराब की लत लग जाने के बाद इसका छूटना कितना मुश्किल होता है। आदमी जान देना क़बूल कर लेता है मगर शराब छोड़ना क़बूल नहीं कर सकता। अगर शराबी को शराब न मिले तो उसकी हालत बीमार से बदतर हो जाती है। लेकिन कभी आपने सुना है कि जब क़ुरआन पाक में शराब हराम होने का हुक्म आया तो क्या हुआ? वही अरब जो शराब पर जान देते थे, इस हुक्म के सुनते ही उन्होंने अपने हाथ से शराब के मटके तोड़ डाले, मदीना की गलियों में शराब इस तरह बह रही थी जैसे बारिश का पानी बहता है। एक मजलिस में

कुछ लोग बैठे शराब पी रहे थे, जिस वक़्त उन्होंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के मुनादी (एलान करनेवाले) की आवाज़ सुनी कि शराब हराम कर दी गई तो जिस शख़्स का हाथ जहाँ था वहीं का वहीं रह गया। जिसके मुँह से प्याला लगा हुआ था उसने फ़ौरन उसको हटा लिया और फिर एक बूँद हलक़ में न जाने दी। यह है ईमान की शान! इसको कहते हैं ख़ुदा और रसूल की इताअत!!

आपको मालूम है कि इस्लाम में ज़िना की सज़ा कितनी सख़्त रखी गई है? नंगी पीठ पर सौ कोड़े। जिनका ख़याल करने से आदमी के रोंगटे खड़े हो जाएँ। मगर आपने यह भी सुना कि जिनके दिल में ईमान था उनकी क्या कैफ़ियत थी? एक शख़्स ज़िना कर बैठा। कोई गवाह न था, कोई अदालत तक पकड़कर ले जानेवाला न था, कोई पुलिस को ख़बर करनेवाला न था, सिर्फ़ दिल में ईमान था जिसने उस आदमी से कहा कि जब तूने ख़ुदा के क़ानून के ख़िलाफ़ अपने दिल की ख़ाहिश पूरी की है तो अब जो सज़ा ख़ुदा ने इस जुर्म के लिए मुक़र्रर की है उसको भुगतने के लिए तैयार हो जा। चुनाँचे वह शख़्स ख़ुद अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर होता है और अर्ज़ करता है कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने ज़िना किया है, मुझे सज़ा

दीजिए। आप *(सल्ल.)* मुँह फेर लेते हैं तो फिर दूसरी तरफ़ आकर यही बात कहता है। आप *(सल्ल.)* फिर मुँह फेर लेते हैं तो वह फिर सामने आकर सज़ा की दरख़्वास्त करता है कि जो मैंने किया है उसकी सज़ा मुझे दी जाए— यह है ईमान! जिसके दिल में ईमान मौजूद है उसके लिए नंगी पीठ पर सौ कोड़े खाना बल्कि संगसार तक कर दिया जाना आसान है; मगर नाफ़रमान बनकर ख़ुदा के सामने हाज़िर होना मुश्किल।

आपको यह भी मालूम है कि इनसान के लिए दुनिया में अपने रिश्तेदारों से बढ़कर कोई प्यारा नहीं होता। ख़ासकर बाप, भाई, बेटे तो इतने प्यारे होते हैं कि उनपर सब कुछ क़ुरबान कर देना आदमी गवारा कर लेता है। मगर आप ज़रा बद्र और उहुद की लड़ाइयों पर ग़ौर कीजिए कि इनमें कौन किसके ख़िलाफ़ लड़ने गया था? बाप मुसलमानों की फ़ौज में है तो बेटा दुश्मनों की फ़ौज में, या बेटा इस तरफ़ है तो बाप उस तरफ़, एक भाई इधर तो दूसरा भाई उधर। क़रीब से क़रीब रिश्तेदार एक-दूसरे के मुक़ाबिले में आए हैं और इस तरह लड़े हैं कि मानो ये एक-दूसरे को पहचानते ही नहीं। और यह जोश उनमें कुछ रुपये-पैसे या ज़मीन के लिए नहीं भड़का था, न कोई आपसी

दुश्मनी थी, बल्कि सिर्फ़ इस वजह से वे अपने ख़ून और अपने गोश्त-पोस्त के ख़िलाफ़ लड़ गए कि वे ख़ुदा और रसूल *(सल्ल.)* पर बाप, बेटे, भाई और सारे ख़ानदान को क़ुरबान कर देने की ताक़त रखते थे।

आपको यह भी मालूम है कि अरब में जितने पुराने रस्मो-रिवाज थे, इस्लाम ने क़रीब-क़रीब उन सभी को तोड़ डाला था। सबसे बड़ी चीज़ तो बुतपरस्ती थी जिसका रिवाज सैंकड़ों साल से चला आ रहा था। इस्लाम ने कहा कि इन बुतों को छोड़ दो। शराब, ज़िना, जुआ, चोरी और डाका अरब में मामूली बात थी, इस्लाम ने कहा कि इन सबको छोड़ दो। औरतें अरब में बे-परदा घूमती-फिरती थीं। इस्लाम ने हुक्म दिया कि परदा करो। औरतों को विरासत में कोई हिस्सा न दिया जाता था। इस्लाम ने कहा कि इनका भी विरासत में हिस्सा है। लेपालक को वही हैसियत दी जाती थी जो सगी औलाद की होती है। इस्लाम ने कहा कि वह सगी औलाद की तरह नहीं है, बल्कि लेपालक अगर अपनी बीवी को छोड़ दे तो उससे निकाह किया जा सकता है। ग़रज़ कि कौन-सी पुरानी रस्म ऐसी थी जिसको तोड़ने का हुक्म इस्लाम ने न दिया हो। मगर आपको मालूम है कि जो लोग ख़ुदा और रसूल पर ईमान लाए थे उनका क्या तर्ज़े-अमल

था? सदियों से जिन बुतों को वे और उनके बाप-दादा सज्दा करते और नज़रें चढ़ाया करते थे, उनको इन ईमानवालों ने अपने हाथों से तोड़ा। सैंकड़ों साल से जो ख़ानदानी रस्में चली आ रही थीं उन सबको उन्होंने मिटाकर रख दिया। जिन चीज़ों को वे पाक समझते थे, खुदा का हुक्म पाकर (कि वे नापाक हैं) उन्हें पाँवों तले रौंद डाला। जिन चीज़ों को वे नाजाइज़ समझते थे, खुदा का हुक्म आते ही (कि वे जाइज़ हैं) उनको जाइज़ समझने लगे। जो चीज़ें सदियों से पाक समझी जाती थीं वे एकदम नापाक हो गईं और जो सदियों से नापाक समझी जाती थीं वे यकायक पाक हो गईं। कुफ़्र के जिन तरीक़ों में लज़्ज़त और फ़ायदे के सामान थे, खुदा का हुक्म पाते ही उनको छोड़ दिया गया और इस्लाम के जिन हुक्मों की पाबन्दी इनसान पर मुश्किल गुज़रती है उन सबको खुशी-खुशी क़बूल कर लिया गया। इसका नाम है ईमान और इसको कहते हैं इस्लाम! अगर अरब के लोग उस वक़्त कहते कि फ़ुलाँ बात हम इसलिए नहीं मानते कि हमारा इसमें नुक़सान है और फ़ुलाँ बात को हम इसलिए नहीं छोड़ते कि इसमें हमारा फ़ायदा है, और फ़ुलाँ काम को तो हम ज़रूर करेंगे क्योंकि बाप-दादा से यही होता चला आया है, और फ़ुलाँ

बातें रूमियों की हमें पसन्द हैं और फुलाँ ईरानियों की हमें अच्छी लगती हैं। ग़रज़ अरब के लोग इसी तरह इस्लाम की एक-एक बात को रद्द कर देते तो आप समझ सकते हैं कि आज दुनिया में कोई मुसलमान न होता।

क़ुरआन में आया है—

"तुम नेकी को पहुँच नहीं सकते जब तक कि अपनी वे चीज़ें (अल्लाह की राह में) ख़र्च न करो जो तुम्हें प्यारी हैं।" (क़ुरआन, 3 : 92)

बस यही आयत इस्लाम और ईमान की जान है। इस्लाम की असल शान यही है कि जो चीज़ें आपको प्यारी हैं, उनको ख़ुदा की ख़ुशी पर क़ुरबान कर दें। ज़िन्दगी के सारे मामलों में आप देखते हैं कि ख़ुदा का हुक्म एक तरफ़ बुलाता है और नफ़्स की ख़्वाहिशें दूसरी तरफ़ बुलाती हैं। ख़ुदा एक काम का हुक्म देता है, नफ़्स कहता है कि इसमें तो तकलीफ़ है या नुक़सान। ख़ुदा एक बात से रोकता है, नफ़्स कहता है कि यह तो बड़ी मज़ेदार चीज़ है, यह तो बड़े फ़ायदे की चीज़ है। एक तरफ़ ख़ुदा की ख़ुशनूदी होती है और दूसरी तरफ़ एक दुनिया की दुनिया खड़ी होती है। ग़रज़ ज़िन्दगी में हर-हर क़दम पर इनसान को दो रास्ते मिलते हैं। एक रास्ता इस्लाम का है और दूसरा कुफ़्र और निफ़ाक़ का।

जिसने दुनिया की हर चीज़ को ठुकराकर खुदा के हुक्म के आगे सिर झुका दिया उसने इस्लाम का रास्ता अपना लिया, और जिसने खुदा के हुक्म को छोड़कर अपने दिल की या दुनिया की खुशी पूरी की, उसने कुफ़्र या निफ़ाक़ का रास्ता अपना लिया।

आज लोगों का हाल यह है कि इस्लाम की जो बात आसान है उसे तो बड़ी खुशी के साथ क़बूल करते हैं, मगर जहाँ कुफ़्र और इस्लाम का असली मुक़ाबला होता है वहीं से रुख़ बदल देते हैं, इस्लाम के बड़े-बड़े दावेदारों में भी यह कमज़ोरी मौजूद है। वे इस्लाम-इस्लाम बहुत पुकारेंगे, उसकी तारीफ़ करते-करते उनकी ज़बान खुश्क हो जाएगी, उसके लिए कुछ दिखावे के काम भी कर देंगे। मगर उनसे कहिए कि यह इस्लाम जिसकी आप इतनी तारीफ़ कर रहे हैं, आइए ज़रा इसके क़ानून को हम-आप खुद अपने ऊपर लागू करें तो वे फ़ौरन कहेंगे कि इसमें फ़ुलाँ मुश्किल है और फ़ुलाँ दिक़्क़त है और अभी तो इसको बस रहने ही दीजिए। मतलब यह है कि इस्लाम एक ख़ूबसूरत खिलौना है, इसको बस ताक़ पर रखिए और दूर से बैठकर इसकी तारीफ़ें किए जाइए, मगर इसे खुद अपनी ज़ात पर और अपने घरवालों और रिश्तेदारों पर और अपने कारोबार और मामलों पर एक क़ानून की हैसियत

से लागू करने का नाम तक न लीजिए। यह हमारे आजकल के दीनदारों का हाल है। अब दुनियादारों का तो ज़िक्र ही बेकार है। इसी का नतीजा है कि न अब नमाज़ों में वह असर है जो कभी था, न रोज़ों में है, न क़ुरआन पढ़ने में और न शरीअत की ज़ाहिरी पाबंदियों में। इसलिए कि जब रूह ही मौजूद नहीं तो निरा बेजान जिस्म क्या करामत दिखाएगा?

☆☆☆

लेखक की कुछ अन्य पुस्तकें

- नमाज़ में क्या पढ़ते हैं?
- ईमान की कसौटी
- इबादत
- इस्लाम का असूल मेयार
- खुदा की इबादत किसलिए?
- परदा
- दीनियात
- सोचने की बातें
- शान्ति मार्ग
- बनाव-बिगाड़
- मुसलमान किसे कहते हैं?
- सत्य धर्म
- नमाज़ें बे-असर क्यों हो गईं?
- इस्लाम की जीवन-व्यवस्था